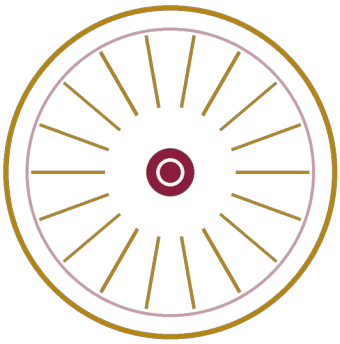

अध्याय 17: श्रद्धात्रयविभागयोग

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.01**

> अर्जुन उवाच |
>
> ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः |
>
> तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः || **01** ||

हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्र-विधि को छोड़कर केवल श्रद्धा से युक्त होकर पूजा-पाठ आदि करते हैं, उनकी वह निष्ठा (स्थिति) कैसी है? सात्त्विकी है, राजसी है अथवा तामसी?

सरल व्याख्या:

पिछले अध्याय के अंत में भगवान ने कहा था कि कर्तव्य के निर्णय में शास्त्र ही प्रमाण हैं। इस पर अर्जुन प्रश्न पूछते हैं कि ऐसे लोग जो शास्त्रों के कठिन नियमों को तो नहीं जानते या उनका पालन नहीं कर पाते, लेकिन मन में पूरी श्रद्धा रखकर ईश्वर की पूजा करते हैं, उनकी वह पूजा किस श्रेणी में आएगी? क्या वह सात्त्विक है, राजसिक है या तामसिक?

> यह श्लोक हमें बताता है कि... नियमों के ज्ञान से भी बढ़कर मन की आंतरिक भावना और श्रद्धा का अपना विशेष स्थान होता है।

श्लोक संख्या: **17.02**

> श्रीभगवानुवाच |
>
> त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा |
>
> सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु || **02** ||

हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान बोले—मनुष्यों की वह बिना शास्त्रों के संस्कार से उत्पन्न हुई स्वभावजन्य श्रद्धा तीन प्रकार की ही होती है—सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी। उसको तुम मेरे से सुनो।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हर व्यक्ति के भीतर उसकी अपनी श्रद्धा होती है, और यह श्रद्धा उसके पूर्व जन्मों के संस्कारों तथा स्वभाव के अनुसार तीन प्रकार की होती है। व्यक्ति जैसा गुण अपने भीतर बढ़ाता है, उसकी श्रद्धा भी वैसी ही बन जाती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी श्रद्धा और विश्वास हमारे अपने आंतरिक स्वभाव और गुणों के दर्पण हैं।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.03**

> सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत |
> श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः || **03** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे भारत! सब मनुष्यों की श्रद्धा उनके अंतःकरण के अनुरूप होती है। यह मनुष्य श्रद्धामय ही है; इसलिए जो पुरुष जैसी श्रद्धा वाला है, वह स्वयं भी वही (वैसा ही) है।

सरल व्याख्या:

यह अध्यात्म का अत्यंत गहरा सूत्र है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनुष्य वास्तव में अपनी श्रद्धा का ही रूप है। जैसी उसकी गहरी आस्था और सोच होगी, वैसा ही उसका व्यक्तित्व बन जाएगा। जो उच्च आदर्शों में श्रद्धा रखता है वह महान बनता है, और जो निम्न बातों में श्रद्धा रखता है वह वैसा ही बन जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... हम वही हैं जो हमारी श्रद्धा है; हमारे विचार और विश्वास ही हमारे जीवन की दिशा तय करते हैं।

श्लोक संख्या: **17.04**

> यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः |
> प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः || **04** ||

हिन्दी अनुवाद:

सात्त्विक पुरुष देवों को पूजते हैं; राजस पुरुष यक्षों और राक्षसों को पूजते हैं; तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं, वे प्रेतों और भूतगणों को पूजते हैं।

सरल व्याख्या:

गुणों के आधार पर पूजा-भावना बदल जाती है। सात्त्विक मन वाले लोग प्रकाश और कल्याण के प्रतीक देवों की आराधना करते हैं। राजसिक लोग धन, शक्ति और कामनाओं की पूर्ति के लिए यक्ष-राक्षसी शक्तियों को पूजते हैं। और तमोगुणी लोग अंधकार, भय और जादू-टोने से जुड़ी शक्तियों की ओर आकर्षित होते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... व्यक्ति किसकी पूजा या आराधना करता है, उससे उसके आंतरिक गुणों का पता चलता है।

Satyanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.05**

> अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः |
> दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः || **05** ||

हिन्दी अनुवाद:
जो मनुष्य शास्त्र-विधि से रहित केवल मनगढ़ंत घोर तप को तपते हैं तथा जो दंभ (पाखंड) और अहंकार से युक्त हैं तथा कामना, आसक्ति और बल के घमंड से युक्त हैं।

सरल व्याख्या:
श्रीकृष्ण यहाँ गलत प्रकार के तप और हठ साधना की चेतावनी देते हैं। कुछ लोग केवल दूसरों को दिखाने, अपनी इच्छाएं पूरी करने या घमंड के कारण अपने शरीर को कष्ट देने वाले कठोर और अज्ञानपूर्ण नियम बना लेते हैं। ऐसी हठ साधना सात्त्विक नहीं होती।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... केवल शरीर को पीड़ा देना या दिखावे के लिए कठोर नियम अपनाना सच्चा तप नहीं है।

श्लोक संख्या: **17.06**

> कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः |
> मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् || **06** ||

हिन्दी अनुवाद:
जो शरीर में स्थित इन्द्रिय-समुदाय को और शरीर के भीतर रहने वाले मुझ परमात्मा को भी सुखाते (कष्ट देते) हैं, उन अज्ञानियों को तुम आसुरी निश्चय वाले समझो।

सरल व्याख्या:
भगवान स्पष्ट करते हैं कि हमारे शरीर के भीतर स्वयं ईश्वर का निवास है। जो लोग बिना किसी ज्ञान के व्यर्थ का हठ करके अपने शरीर को अत्यधिक पीड़ा देते हैं, वे वास्तव में अपने भीतर स्थित परमात्मा को ही कष्ट पहुँचाते हैं। ऐसी सोच को श्रीकृष्ण आसुरी स्वभाव कहते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... शरीर का सही रख-रखाव और आदर करना आवश्यक है; ईश्वर की प्राप्ति आत्म-पीड़न से नहीं होती।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.07**

> आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः |
> यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु || **07** ||

हिन्दी अनुवाद:

भोजन भी सबको अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार तीन प्रकार का प्रिय होता है। वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन-तीन प्रकार के होते हैं। उनके इस भेद को तुम मेरे से सुनो।

सरल व्याख्या:

यहाँ से भगवान हमारे दैनिक जीवन की चार मुख्य बातों—आहार (भोजन), यज्ञ (कर्तव्य कर्म), तप (अनुशासन) और दान (सेवा)—का वर्गीकरण करते हैं। वे समझाते हैं कि तीनों गुणों के प्रभाव से मनुष्य का खान-पान और कर्म करने का तरीका भी तीन प्रकार का हो जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे विचार, भोजन की पसंद और कर्मों का तरीका हमारे गुणों से तय होता है।

श्लोक संख्या: **17.08**

> आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः |
> रसियाः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः || **08** ||

हिन्दी अनुवाद:

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य (स्वास्थ्य), सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले, रसयुक्त, चिकने (अच्छे घी-तेल से युक्त), स्थिर रहने वाले और मन को भाने वाले भोजन सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।

सरल व्याख्या:

सात्त्विक भोजन की पहचान यह है कि वह ताजा, सुपाच्य, पौष्टिक और मन को प्रसन्न करने वाला होता है। ऐसा ताज़ा और शुद्ध भोजन शरीर को रोगमुक्त रखता है, आयु बढ़ाता है और मन में शांति तथा ताजगी लाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ताज़ा, सादा और पौष्टिक आहार ही शरीर और मन को स्वस्थ तथा ऊर्जावान बनाता है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.09**

> कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः |
> आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः || **09** ||

हिन्दी अनुवाद:

कड़वे, खट्टे, अधिक नमकीन, बहुत गर्म, तीखे, रूखे और जलन पैदा करने वाले भोजन राजसी पुरुष को प्रिय होते हैं; और वे दुःख, शोक तथा रोगों को देने वाले हैं।

सरल व्याख्या:

राजसिक भोजन में स्वाद और मिर्च-मसाले की अधिकता होती है। अत्यधिक खट्टा, बहुत तीखा, अत्यधिक गर्म या चटपटा खाना राजस स्वभाव वाले लोगों को पसंद आता है। लेकिन ऐसा भोजन शरीर में बीमारियाँ, पेट की जलन, अशांति और मानसिक तनाव पैदा करता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... जीभ के स्वाद के लिए अत्यधिक मिर्च-मसालेदार खाना शरीर और मन की शांति को बिगाड़ता है।

श्लोक संख्या: **17.10**

> यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् |
> उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् || **10** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गंधयुक्त, बासी, जूठा और अपवित्र है, वह भोजन तामस पुरुष को प्रिय होता है।

सरल व्याख्या:

तमोगुणी भोजन वह है जो अपनी ताज़गी खो चुका हो—जैसे बासी खाना, दुर्गंध आने वाला, बहुत समय का रखा हुआ, या अपवित्र तरीके से बना भोजन। ऐसा आहार करने से मनुष्य के भीतर आलस्य, सुस्ती, अज्ञान और बीमारियाँ बढ़ती हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... बासी और अपवित्र भोजन करने से मन में सुस्ती और अज्ञान का अंधकार बढ़ता है।

Satyanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.11**

> अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते |
> यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः || **11** ||

हिन्दी अनुवाद:

फलों की इच्छा न रखने वाले पुरुषों द्वारा शास्त्र-विधि से नियत करके, 'यज्ञ करना ही कर्तव्य है' इस प्रकार मन को स्थिर करके जो यज्ञ किया जाता है, वह सात्त्विक है।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण सात्त्विक यज्ञ का लक्षण बताते हैं। जब कोई कार्य या सेवा बिना किसी व्यक्तिगत लाभ, फल की आशा या स्वार्थ के की जाती है, और केवल इसलिए की जाती है क्योंकि वह एक पवित्र कर्तव्य है, तो ऐसा कार्य सात्त्विक श्रेणी में आता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... फल की इच्छा से मुक्त होकर केवल कर्तव्य मानकर किया गया कार्य ही सच्चा सात्त्विक कर्म है।

श्लोक संख्या: **17.12**

> अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् |
> इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् || **12** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे भरतश्रेष्ठ! परंतु जो यज्ञ केवल फल पाने के उद्देश्य से अथवा केवल दिखावे (दंभ) के लिए किया जाता है, उस यज्ञ को तुम राजस समझो।

सरल व्याख्या:

राजसिक कर्म की पहचान यह है कि उसके पीछे कोई न कोई सांसारिक स्वार्थ, मान-सम्मान पाने की इच्छा या समाज में अपनी प्रतिष्ठा का दिखावा छिपा होता है। ऐसा कार्य ऊपर से कितना भी धार्मिक लगे, उसका मूल उद्देश्य केवल अपना अहंकार तृप्त करना होता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... दिखावे और सांसारिक फल की चाहत से किया गया कार्य मन को शांति देने के बजाय बंधन में डालता है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.13**

> विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् |
> श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते || **13** ||

हिन्दी अनुवाद:
शास्त्र-विधि से रहित, अन्नदान से रहित, बिना मंत्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किए गए यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

सरल व्याख्या:
तमोगुणी कर्म वह है जिसमें न तो नियमों की परवाह होती है, न दूसरों की भलाई (अन्नदान) का भाव होता है, और न ही मन में कोई सच्ची श्रद्धा या आदर होता है। ऐसा काम केवल बेमन से या अज्ञानवश किया जाता है, जिसका कोई शुभ परिणाम नहीं निकलता।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रद्धा और भावना के बिना बेमन से किया गया कार्य व्यर्थ और तामसिक होता है।

श्लोक संख्या: **17.14**

> देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् |
> ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते || **14** ||

हिन्दी अनुवाद:
देवताओं, ब्राह्मणों (ज्ञानीजनों), गुरुओं और विद्वानों का पूजन करना, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शरीर का तप कहा जाता है।

सरल व्याख्या:
भगवान अब तप का भेद बताते हुए पहले 'शरीर के तप' की बात करते हैं। अपने से बड़ों और ज्ञानियों का आदर करना, शरीर की स्वच्छता रखना, आचरण में सरलता लाना, इन्द्रियों का संयम (ब्रह्मचर्य) और किसी जीव को शारीरिक कष्ट न देना ही शरीर का सच्चा तप है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... आचरण की पवित्रता, संयम और श्रेष्ठ जनों का सम्मान ही शारीरिक तपस्या है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.15**

> अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् |
> स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते || **15** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो वाक्य किसी को उद्वेग (कष्ट/अशांति) न देने वाला हो, सत्य हो, प्रिय हो और हितकारी हो तथा जो वेद-शास्त्रों का निरंतर अभ्यास है—वही वाणी का तप कहा जाता है।

सरल व्याख्या:

वाणी के तप का अर्थ है अपनी बोलचाल पर नियंत्रण। ऐसी बात बोलना जिससे किसी का मन न दुखे, जो पूरी तरह सत्य हो, सुनने में प्रिय लगे और दूसरों के भले के लिए हो—यही वाणी का संयम है। इसके साथ ही सद्ग्रंथों का निरंतर पाठ करना वाणी की तपस्या है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य, मधुर और हितकारी वचन बोलना ही वाणी की सबसे बड़ी साधना है।

श्लोक संख्या: **17.16**

> मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः |
> भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते || **16** ||

हिन्दी अनुवाद:

मन की प्रसन्नता, शांत भाव, भगवच्चिंतन रूप मौन, मन का निग्रह (नियंत्रण) और भावों की भली-भांति पवित्रता—यह मन का तप कहा जाता है।

सरल व्याख्या:

'मन का तप' अंतःकरण की साधना है। मन को हमेशा शांत और प्रसन्न रखना, व्यर्थ के विचारों से दूर रहकर शांत (मौन) रहना, मन की चंचलता को रोकना और अपनी भावनाओं को पूरी तरह शुद्ध रखना ही मानसिक तपस्या है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... विचारों की शुद्धता और मन की आंतरिक प्रसन्नता ही वास्तविक मानसिक तप है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.17**

> श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः |
> अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते || **17** ||

हिन्दी अनुवाद:

फल की इच्छा न रखने वाले, परम योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा से तपे हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकार के (शरीर, वाणी और मन के) तप को सात्त्विक कहते हैं।

सरल व्याख्या:

जब मनुष्य शरीर, वाणी और मन के इन तीनों तपों को पूरी श्रद्धा से करता है, और बदले में किसी सांसारिक सुख या फल की इच्छा नहीं रखता, तो उसकी वह तपस्या सात्त्विक कहलाती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... निष्काम भाव और गहरी श्रद्धा से किया गया अनुशासन ही आत्मा को शुद्ध करता है।

श्लोक संख्या: **17.18**

> सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् |
> क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् || **18** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो तप केवल सत्कार, मान और पूजा-प्रतिष्ठा पाने के लिए अथवा पाखंड (दिखावे) से किया जाता है, वह अनिश्चित और क्षणिक फल देने वाला तप यहाँ 'राजस' कहा गया है।

सरल व्याख्या:

यदि कोई व्यक्ति संयम या नियम केवल इसलिए अपनाता है ताकि लोग उसकी प्रशंसा करें, उसे बड़ा साधु या महात्मा समझें और उसकी पूजा करें, तो ऐसा तप राजसिक है। इसका फल बहुत छोटा, अस्थाई और नश्वर होता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... वाह-वाही पाने के लिए किया गया संयम या तपस्या टिकाऊ नहीं होती और न ही उससे आत्म-शांति मिलती है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.19**

> मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः |
> परस्योत्सादनाय वा तत्तामसमुदाहृतम् || **19** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से, अपने-आप को पीड़ा देकर या दूसरों का अनिष्ट (विनाश) करने के उद्देश्य से किया जाता है, वह तप 'तामस' कहा गया है।

सरल व्याख्या:

अज्ञान और हठ के कारण शरीर को जबरदस्ती कष्ट देना या किसी दूसरे व्यक्ति को नुकसान पहुँचाने के लिए कोई तंत्र-मंत्र या कठोर नियम अपनाना तामसिक तप है। ऐसा काम धर्म नहीं बल्कि विनाश का कारण बनता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने या दूसरों के अहित के लिए की गई कोई भी कठोर साधना अज्ञान और अधर्म की श्रेणी में आती है।

श्लोक संख्या: **17.20**

> दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे |
> देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् || **20** ||

हिन्दी अनुवाद:

'दान देना कर्तव्य है' ऐसे भाव से जो दान बिना किसी उपकार की आशा के, सही देश (स्थान), सही काल (समय) और योग्य पात्र (सत्पुरुष) को दिया जाता है, वह दान सात्त्विक माना गया है।

सरल व्याख्या:

सात्त्विक दान की तीन शर्तें हैं: बदले में किसी उपकार या लाभ की इच्छा न हो। दान सही स्थान और सही समय पर दिया जाए। दान किसी ऐसे योग्य व्यक्ति या स्थान पर दिया जाए जहाँ उसका सही उपयोग हो। केवल कर्तव्य की भावना से दिया गया ऐसा दान ही सात्त्विक होता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सही समय पर, सही व्यक्ति को और निष्काम भाव से दी गई सहायता ही सच्चा सात्त्विक दान है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.21**

> यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः |
> दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् || **21** ||

हिन्दी अनुवाद:

परंतु जो दान क्लेशपूर्वक (दुःखी या संकोच के मन से) अथवा प्रत्युपकार के उद्देश्य से (बदले में कुछ पाने की आशा से) या फल को ध्यान में रखकर दिया जाता है, वह दान 'राजस' कहा गया है।

सरल व्याख्या:

यदि कोई व्यक्ति दान देते समय मन में यह सोचता है कि 'इसके बदले मुझे भी कुछ मिलेगा' या केवल समाज में यश पाने के लिए दान देता है, अथवा देते समय उसका मन दुःखी होता है, तो ऐसा दान राजसिक माना जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... भारी मन से या बदले में स्वार्थ रखकर दी गई मदद सात्त्विक नहीं होती।

श्लोक संख्या: **17.22**

> अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते |
> असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् || **22** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो दान बिना सत्कार के, तिरस्कारपूर्वक, अयोग्य स्थान और कुसमय में तथा अपात्रों (अयोग्य व्यक्तियों) को दिया जाता है, वह दान 'तामस' कहा गया है।

सरल व्याख्या:

तमोगुणी दान वह है जो गलत जगह या गलत समय पर दिया जाए, जैसे किसी कुकर्मी को जिससे वह समाज का अहित करे। साथ ही, यदि दान लेने वाले का अनादर या अपमान करके कुछ दिया जाए, तो ऐसा दान दान देने वाले के पतन का कारण बनता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सहायता हमेशा योग्य व्यक्ति को और आदर भाव के साथ ही दी जानी चाहिए।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.23**

> ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः |
> ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा || **23** ||

हिन्दी अनुवाद:
'ॐ', 'तत्', 'सत्'—यह तीन प्रकार का नाम परमात्मा का निर्देश (संकेत) कहा गया है; उसी से सृष्टि के प्रारंभ में ब्राह्मण, वेद और यज्ञों की रचना हुई।

सरल व्याख्या:
श्रीकृष्ण कहते हैं कि परमात्मा को याद करने के लिए ये तीन परम पवित्र शब्द हैं—'ॐ', 'तत्' और 'सत्'। किसी भी धार्मिक कर्म, यज्ञ या दान की शुरुआत में ईश्वर के इन नामों का स्मरण करने से उस कर्म की सभी कमियाँ और त्रुटियाँ दूर हो जाती हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा के स्मरण से ही हमारे सभी कर्म पवित्र और पूर्ण होते हैं।

श्लोक संख्या: **17.24**

> तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः |
> प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततम्ब्रह्मवादिनाम् || **24** ||

हिन्दी अनुवाद:
इसलिए वेद-मंत्रों का उच्चारण करने वाले पुरुषों की शास्त्र-विधि से नियत यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस नाम का उच्चारण करके ही प्रारंभ होती हैं।

सरल व्याख्या:
'ॐ' परमेश्वर की उपस्थिति और पवित्रता का सूचक है। इसलिए जब भी कोई श्रेष्ठ कार्य, पूजा या साधना शुरू की जाती है, तो सबसे पहले 'ॐ' का उच्चारण किया जाता है ताकि मन और वातावरण दोनों शुद्ध हो जाएँ।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... हर शुभ और पवित्र कार्य का आरंभ ईश्वर के परम नाम 'ॐ' के साथ होना चाहिए।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.25**

> तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः |
>
> दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः || **25** ||

हिन्दी अनुवाद:

फलों की इच्छा न रखकर 'तत्' (सब कुछ परमात्मा का है) ऐसा मानकर, मोक्ष की इच्छा वाले पुरुषों द्वारा विविध प्रकार की यज्ञ, तप और दान रूप क्रियाएँ की जाती हैं।

सरल व्याख्या:

'तत्' का अर्थ है 'वह' यानी परमात्मा। मोक्ष चाहने वाले साधक यह मानकर कर्म करते हैं कि यह सब कुछ ईश्वर का ही है, मेरा कुछ नहीं। इसलिए वे अपने कर्मफलों की इच्छा का त्याग करके निष्काम भाव से कर्म करते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्मों को ईश्वर का मानकर करना ही हमें आसक्ति और बंधनों से मुक्त करता है।

श्लोक संख्या: **17.26**

> सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते |
>
> प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते || **26** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! 'सत्' यह नाम सत्य भाव में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है; तथा श्रेष्ठ कर्म के अर्थ में भी 'सत्' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

सरल व्याख्या:

'सत्' का अर्थ है जो सत्य है, श्रेष्ठ है और कल्याणकारी है। जब भी हम कोई अच्छा आचरण, सच्चाई का मार्ग या समाज कल्याण का कार्य करते हैं, तो उस कर्म को 'सत्कर्म' कहा जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य और भलाई के मार्ग पर किया गया हर कार्य परमात्मा से जुड़ा होता है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **17.27**

> यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते |
> कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते || **27** ||

हिन्दी अनुवाद:

यज्ञ, तप और दान में जो अचल स्थिति है, वह भी 'सत्' कही जाती है; और उस परमात्मा के अर्थ (प्राप्ति) के लिए किया गया कर्म ही वास्तव में 'सत्' कहलाता है।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण समझाते हैं कि जब मनुष्य यज्ञ, अनुशासन और दान के कार्यों में निष्ठापूर्वक टिका रहता है, तो उसकी वह स्थिति 'सत्' है। ईश्वर की प्रसन्नता के लिए किया गया कोई भी छोटा या बड़ा काम 'सत्' यानी परम सत्य का ही रूप बन जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर को समर्पित होकर किया गया हर कर्तव्य कर्म परम पवित्र हो जाता है।

श्लोक संख्या: **17.28**

> अश्रद्धया हुतं दत्तन्तप्तन्तप्तञ्च यत्कृतम् |
> असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह || **28** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया हुआ दान, तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है—वह सब 'असत्' कहा जाता है; वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के बाद ही।

सरल व्याख्या:

यह इस अध्याय का अंतिम और सार रूप श्लोक है। भगवान स्पष्ट घोषणा करते हैं कि यदि मन में सच्ची श्रद्धा नहीं है, तो चाहे कितना भी बड़ा यज्ञ, दान या तप क्यों न कर लिया जाए, वह सब व्यर्थ (असत्) हो जाता है। उसका न तो इस जीवन में कोई शांति का फल मिलता है और न ही परलोक में।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी श्रद्धा ही हमारे कर्मों की आत्मा है; बिना श्रद्धा के किए गए सारे साधन निष्प्राण होते हैं।

Satyaanubhuti Ashram

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे

श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः || **17** ||

Satyaanubhuti Ashram